11 राष्ट्रीय आंदोलन का संघटन : 1870 के दशक से 1947 तक

***चित्र 1** – भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान प्रदर्शनकारियों पर आँसू गैस के गोले छोड़ती पुलिस।*

पिछले अध्यायों में हम निम्नलिखित का अध्ययन कर चुके हैं :

- भारतीय भूक्षेत्र पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा और रियासतों का अधिग्रहण
- नये कानूनों और प्रशासकीय संस्थाओं की शुरुआत
- किसानों और आदिवासियों की ज़िंदगी में बदलाव
- उन्नीसवीं सदी में आए शैक्षणिक बदलाव
- महिलाओं की स्थिति से संबंधित वाद-विवाद
- जाति व्यवस्था को चुनौतियाँ
- सामाजिक एवं धार्मिक सुधार
- 1857 का विद्रोह और उसके बाद की स्थिति
- हस्तकलाओं का पतन और उद्योगों का विकास

इन मुद्दों के बारे में आपने जो कुछ पढ़ा, उसके आधार पर क्या आपको ऐसा लगता है कि भारत के लोग ब्रिटिश शासन से असंतुष्ट थे? यदि हाँ तो विभिन्न समूह और वर्ग क्यों असंतुष्ट थे?

राष्ट्रवाद का उदय

उपरोक्त बदलावों ने लोगों को एक अहम सवाल के बारे में सोचने के लिए विवश कर दिया : यह देश क्या है और किसके लिए है? इसका जवाब धीरे-धीरे इस रूप में सामने आया : भारत का मतलब है यहाँ की जनता – भारत, यहाँ रहने वाले किसी भी वर्ग, रंग, जाति, पंथ, भाषा या जेंडर वाले तमाम लोगों का घर है। यह देश और इसके सारे संसाधन और इसकी सारी व्यवस्था उन सभी के लिए है। इस जवाब के साथ ये अहसास भी सामने आया कि अंग्रेज़ भारत के संसाधनों व यहाँ के लोगों की ज़िंदगी पर कब्ज़ा जमाए हुए हैं और जब तक यह नियंत्रण खत्म नहीं होता, भारत यहाँ के लोगों का, भारतीयों का नहीं हो सकता।

यह चेतना 1850 के बाद बने राजनीतिक संगठनों में साफ दिखाई देने लगी थी। 1870 और 1880 के दशकों में बने राजनीतिक संगठनों में यह चेतना और गहरी हो चुकी थी। इनमें से ज्यादतर संगठनों की बागडोर वकील आदि अंग्रेज़ी शिक्षित पेशेवरों के हाथों में थी। पूना सार्वजनिक सभा, इंडियन एसोसिएशन, मद्रास महाजन सभा, बॉम्बे रेज़ीडेंसी एसोसिएशन और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस आदि इस तरह के प्रमुख संगठन थे।

"पूना सार्वजनिक सभा" नाम को गौर से देखिए। "सार्वजनिक" का मतलब होता है "सब लोगों का या सबके लिए" (सर्व=सभी, जनिक=लोगों का)। हालांकि इनमें से बहुत सारे संगठन देश के खास हिस्सों में काम कर रहे थे लेकिन वे अपने लक्ष्य को भारत के सभी लोगों का लक्ष्य बताते थे। उनके मुताबिक, उनके लक्ष्य किसी खास इलाके, समुदाय या वर्ग के लक्ष्य नहीं थे। वे इस सोच के साथ काम कर रहे थे कि लोग **सम्प्रभु** हों। सम्प्रभुता एक आधुनिक विचार और राष्ट्रवाद का बुनियादी तत्व होता है। ये संगठन इस धारणा से चलते थे कि भारतीय जनता को अपने मामलों के बारे में फैसले लेने की आज़ादी होनी चाहिए।

सम्प्रभु – बाहरी हस्तक्षेप के बिना स्वतंत्र रूप से कदम उठाने की क्षमता।

1870 और 1880 के दशकों में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष और ज़्यादा गहरा हुआ। 1878 में आर्म्स एक्ट पारित किया गया जिसके जरिए भारतीयों द्वारा अपने पास हथियार रखने का अधिकार छीन लिया गया। उसी साल वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट भी पारित किया गया जिससे सरकार की आलोचना करने वालों को चुप कराया जा सके। इस कानून में प्रावधान था कि अगर किसी अखबार में कोई 'आपत्तिजनक' चीज छपती है तो सरकार उसकी प्रिंटिंग प्रेस सहित सारी सम्पत्ति को जब्त कर सकती है। 1883 में सरकार ने इल्बर्ट बिल लागू करने का प्रयास किया। इसको लेकर काफी हंगामा हुआ। इस विधेयक में प्रावधान किया गया था कि भारतीय न्यायाधीश भी ब्रिटिश या यूरोपीय व्यक्तियों पर मुकदमे चला सकते हैं ताकि भारत में काम करने वाले अंग्रेज़ और भारतीय न्यायाधीशों के बीच समानता स्थापित की जा सके। जब अंग्रेज़ों के विरोध की वजह से सरकार ने यह विधेयक वापस ले लिया तो भारतीयों ने इस बात का काफी विरोध किया। इस घटना से भारत में अंग्रेज़ों के असली रवैये का पता चलता था।

पढ़े-लिखे भारतीयों के एक अखिल भारतीय संगठन की ज़रूरत 1880 से ही महसूस की जा रही थी परन्तु इल्बर्ट विधेयक ने इस चाह को और गहरा कर दिया था। 1885 में देश भर के 72 प्रतिनिधियों ने बम्बई में सभा करके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का फैसला लिया। संगठन के प्रारम्भिक नेता – दादा भाई नौरोजी, फिरोज़शाह मेहता, बदरूद्दीन तैयब जी, डब्ल्यू. सी. बैनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, रोमेशचन्द्र दत्त, एस. सुब्रमण्यम अय्यर एवं अन्य – प्राय: बम्बई और कलकत्ता के ही थे। नौरोजी व्यवसायी और **प्रचारक** थे। वे लंदन में रहते थे और कुछ समय के लिए ब्रिटिश संसद के सदस्य भी रहे। उन्होंने युवा राष्ट्रवादियों का मार्गदर्शन किया। सेवानिवृत्त ब्रिटिश अफसर ए.ओ.ह्यूम ने भी विभिन्न क्षेत्रों के भारतीयों को निकट लाने में अहम भूमिका अदा की।

प्रचारक – ऐसा व्यक्ति जो सूचनाओं के प्रसार, रिपोर्ट्स, बैठकों में भाषण आदि के ज़रिए किसी खास विचार का प्रचार-प्रसार करता है।

स्रोत 1

कांग्रेस किसके पक्ष में बोलने का प्रयास कर रही थी?

जनवरी 1886 में *दि इंडियन मिरर* नामक अखबार ने लिखा:

बम्बई में आयोजित प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस हमारे देश की भावी संसद का केंद्रक है और यह हमारे देशवासियों के लिए अकल्पनीय रूप से लाभकारी परिणामों को जन्म देगी।

बदरूद्दीन तैयबजी ने 1887 में अध्यक्ष की हैसियत से कांग्रेस को संबोधित करते हुए कहा था :

यह कांग्रेस भारत के किसी एक वर्ग या समुदाय के प्रतिनिधियों से मिलकर नहीं बनी है बल्कि यह भारत के सभी समुदायों की संस्था है।

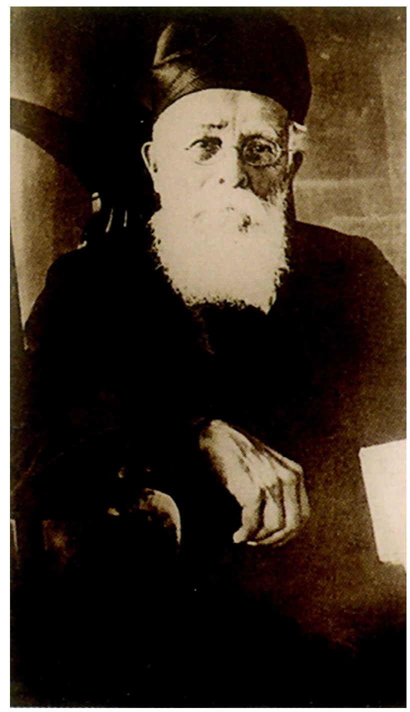

चित्र 2 - दादाभाई नौरोजी।
नौरोजी की पुस्तक *पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया* में ब्रिटिश शासन के आर्थिक परिणामों की बहुत तीखी आलोचना की गई थी।

उभरता हुआ राष्ट्र

अकसर कहा जाता है कि अपने पहले बीस सालों में कांग्रेस अपने उद्देश्य और तरीकों के लिहाज़ से "मध्यमार्गी" पार्टी थी। इस दौरान कांग्रेस ने सरकार और शासन में भारतीयों को और ज़्यादा जगह दिए जाने के लिए आवाज़ उठाई। कांग्रेस का आग्रह था कि विधान परिषदों में भारतीयों को ज़्यादा जगह दी जाए, परिषदों को ज़्यादा अधिकार दिए जाएँ और जिन प्रांतों में परिषदें नहीं हैं वहाँ उनका गठन किया जाए। कांग्रेस चाहती थी कि सरकार में भारतीयों को भी ऊँचे पद दिए जाएँ। इस काम के लिए उसने माँग की कि सिविल सेवा के लिए लंदन के साथ-साथ भारत में भी परीक्षा आयोजित की जाए।

गतिविधि

शुरुआत से ही कांग्रेस *सभी* भारतीय *लोगों* के हक में और उनकी ओर से बोलने का संकल्प व्यक्त कर रही थी। कांग्रेस ने ऐसा क्यों किया?

निरस्त करना - किसी कानून को समाप्त करना, किसी कानून की वैधता अधिकृत रूप से समाप्त कर देना।

शासन व्यवस्था के भारतीयकरण की माँग नस्लवाद के खिलाफ चल रहे आंदोलन का एक हिस्सा थी क्योंकि तब तक ज़्यादातर महत्वपूर्ण नौकरियों पर गोरे अफसरों का ही कब्ज़ा था। अंग्रेज़ आमतौर पर यह मानकर चलते थे कि भारतीयों को जिम्मेदारी भरे पद नहीं दिए जा सकते। क्योंकि अंग्रेज़ अफसर अपने भारी-भरकम वेतन का एक बड़ा हिस्सा ब्रिटेन भेज देते थे इसलिए लोगों को उम्मीद थी कि भारतीयकरण से यहाँ की धन-सम्पत्ति भी कुछ हद तक भारत में रुकने लगेगी। भारतीयों की माँग थी कि न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाए, आर्म्स एक्ट को **निरस्त** किया जाए और अभिव्यक्ति व बोलने की स्वतंत्रता दी जाए।

शुरुआती सालों में कांग्रेस ने कई आर्थिक मुद्दे भी उठाए। उसका कहना था कि भारत में ब्रिटिश शासन की वजह से ही गरीबी और अकाल पड़ रहे हैं। बढ़ते लगान के कारण काश्तकार और ज़मींदार विपन्न हो गए थे और अनाजों के भारी निर्यात की वजह से खाद्य पदार्थों का अभाव पैदा हो गया था। कांग्रेस की माँग थी कि लगान कम किया जाए, फौजी खर्चों में कटौती की जाए और सिंचाई के लिए ज़्यादा अनुदान दिए जाएँ। उसने नमक कर, विदेशों में भारतीय मज़दूरों के साथ होने वाले बर्ताव तथा भारतीयों के कामों में दखलअंदाजी करने वाले वन प्रशासन की वजह से वनवासियों की बढ़ती मुसीबतों के बारे में बहुत सारे प्रस्ताव पारित किए। इससे पता चलता है कि पढ़े-लिखे सम्पन्न वर्ग की संस्था होते हुए भी कांग्रेस केवल पेशेवर समूहों, ज़मींदारों और उद्योगपतियों के हक में ही नहीं बोल रही थी।

स्रोत 2

सोने की चाह में

डिनशॉ वाचा नामक एक मध्यमार्गी नेता ने 1887 में नौरोजी को संबोधित करते हुए लिखा था :

> आजकल फिरोज़शाह अपने निजी कामों में बहुत ज़्यादा व्यस्त हैं...। वे लोग पहले ही काफी अमीर हैं...। तेलंग साहब भी व्यस्त रहते हैं। मुझे समझ में नहीं आता अगर सभी लोग सोने की चाह में इतने व्यस्त रहेंगे तो देश की प्रगति कैसे हो सकती है?

मध्यमार्गी नेता जनता को ब्रिटिश शासन के अन्यायपूर्ण चरित्र से अवगत कराना चाहते थे। उन्होंने अखबार निकाले, लेख लिखे और यह साबित करने का प्रयास किया कि ब्रिटिश शासन देश को आर्थिक तबाही की ओर ले जा रहा है। उन्होंने अपने भाषणों में ब्रिटिश शासन की निंदा की और जनमत निर्माण के लिए देश के विभिन्न भागों में अपने प्रतिनिधि भेजे। लेकिन मध्यमार्गियों को ये भी लगता था कि अंग्रेज़ स्वतंत्रता व न्याय के आदर्शों का सम्मान करते हैं इसलिए वे भारतीयों की न्यायसंगत माँगों को स्वीकार कर लेंगे। लिहाजा, कांग्रेस का मानना था कि सरकार को भारतीयों की भावना से अवगत कराया जाना चाहिए।

गतिविधि

उपरोक्त टिप्पणी के आधार पर शुरुआती कांग्रेस के बारे में कौन सी समस्याओं का पता चलता है?

“स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है”

1890 के दशक तक बहुत सारे लोग कांग्रेस के राजनीतिक तौर-तरीकों पर सवाल खड़ा करने लगे थे। बंगाल, पंजाब और महाराष्ट्र में बिपिनचंद्र पाल, बाल गंगाधार तिलक और लाला लाजपत राय जैसे नेता ज़्यादा आमूल परिवर्तनवादी उद्देश्य और पद्धतियों के अनुरूप काम करने लगे थे। उन्होंने “निवेदन की राजनीति” के लिए नरमपंथियों की आलोचना की और आत्मनिर्भरता तथा रचनात्मक कामों के महत्त्व पर जोर दिया। उनका कहना था कि लोगों को सरकार के “नेक” इरादों पर नहीं बल्कि अपनी ताकत पर भरोसा करना चाहिए : लोगों को स्वराज के लिए लड़ना चाहिए। तिलक ने नारा दिया – “स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा!”

1905 में वायसराय कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन कर दिया। उस वक्त बंगाल ब्रिटिश भारत का सबसे बड़ा प्रांत था। बिहार और उड़ीसा के कुछ भाग भी उस समय बंगाल का हिस्सा थे। अंग्रेज़ों का कहना था कि प्रशासकीय सुविधा को ध्यान में रखते हुए बंगाल का बँटवारा करना ज़रूरी था। परन्तु इस "प्रशासकीय सुविधा" का मतलब क्या था? इससे किसको "सुविधा" मिलने वाली थी? ज़ाहिर है इसका ताल्लुक अंग्रेज़ अफसरों और व्यापारियों के फायदे से था। लेकिन सरकार ने गैर-बंगाली इलाकों को अलग करने की बजाय उसके पूर्वी भागों को अलग करके असम में मिला दिया। पूर्वी बंगाल को अलग करने के पीछे अंग्रेज़ों का मुख्य उद्देश्य ये रहा होगा कि बंगाली राजनेताओं के प्रभाव पर अंकुश लगाया जाए और बंगाली जनता को बाँट दिया जाए।

बंगाल के विभाजन से देश भर में गुस्से की लहर फैल गई। मध्यमार्गी और आमूल परिवर्तनवादी, कांग्रेस के सभी धड़ों ने इसका विरोध किया। विशाल जनसभाओं का आयोजन किया गया और जुलूस निकाले गए। जनप्रतिरोध के नए-नए रास्ते ढूँढ़े गए। इससे जो संघर्ष उपजा उसे स्वदेशी आंदोलन के नाम से जाना जाता है। यह आंदोलन बंगाल में सबसे ताकतवर था परन्तु अन्य इलाकों में भी इसकी भारी अनुगूँज सुनाई दी। उदाहरण के

चित्र 3 *- बाल गंगाधर तिलक।*

मेज़ पर रखे अखबार का नाम देखिए। तिलक के संपादन में निकलने वाला मराठी अखबार – *केसरी* – ब्रिटिश शासन का कट्टर आलोचक बन गया था।

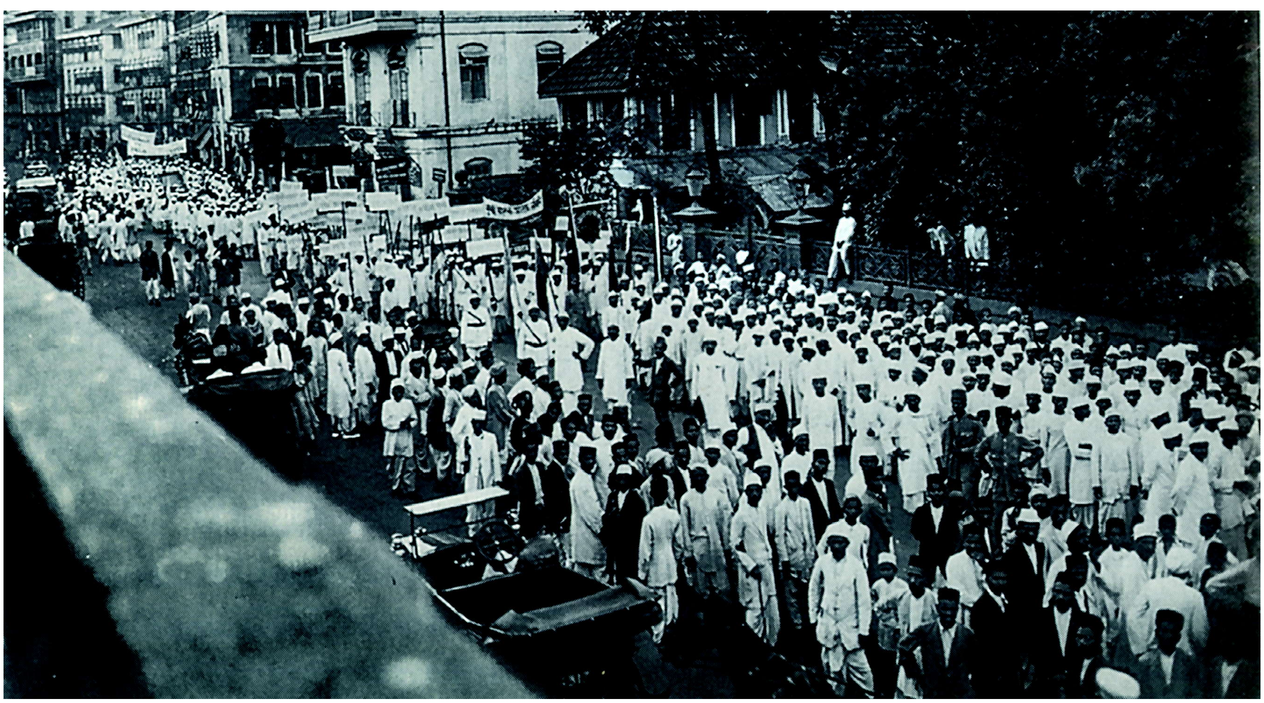

चित्र 4 *- स्वदेशी आंदोलन के दौरान हज़ारों लोग जुलूसों में शामिल होने लगे।*

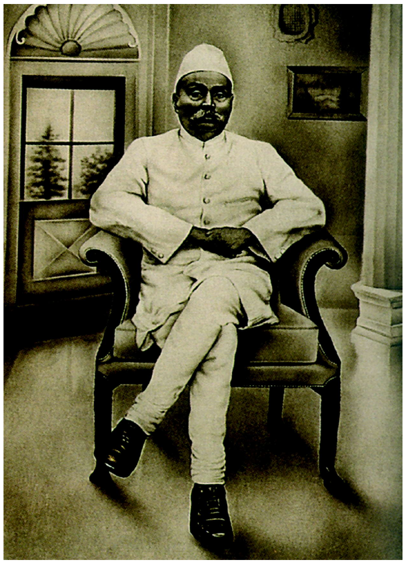

चित्र 5 - लाला लाजपत राय।
लाजपत राय पंजाब के जाने-माने राष्ट्रवादियों में से थे। वह याचिका और निवेदनों की राजनीति का विरोध करने वाले आमूल परिवर्तनवादी धड़े के एक प्रमुख नेता थे। वह आर्यसमाज के भी सक्रिय सदस्य थे।

क्रांतिकारी हिंसा - समाज में आमूल बदलाव लाने के लिए हिंसा का उपयोग करना।

परिषद - प्रशासकीय, सलाहकारी या प्रातिनिधिक दायित्वों को निभाने वाली मनोनीत या निर्वाचित संस्था।

लिए, आंध्र के डेल्टा इलाकों में इसे वंदेमातरम् आंदोलन के नाम से जाना जाता था।

स्वदेशी आंदोलन ने ब्रिटिश शासन का विरोध किया और स्वयं सहायता, स्वदेशी उद्यमों, राष्ट्रीय शिक्षा और भारतीय भाषा के उपयोग को बढ़ावा दिया। स्वराज के लिए आमूल परिवर्तनवादी धड़े ने जनता को लामबंद करने और ब्रिटिश संस्थानों व वस्तुओं के बहिष्कार पर ज़ोर दिया। कुछ लोग ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए **"क्रांतिकारी हिंसा"** के समर्थक थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में कई दूसरी महत्वपूर्ण घटनाएँ भी घटीं। 1906 में मुसलमान ज़मींदारों और नवाबों के एक समूह ने ढाका में ऑल इंडिया मुसलिम लीग का गठन किया। लीग ने बंगाल विभाजन का समर्थन किया। लीग की माँग थी कि मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचिका की व्यवस्था की जाए। 1909 में सरकार ने यह माँग मान ली। अब **परिषदों** में कुछ सीटें मुसलमान उम्मीदवारों के लिए आरक्षित कर दी गईं जिन्हें मुसलिम मतदाताओं द्वारा ही चुनकर भेजा जाना था। इससे राजनेताओं में अपने धार्मिक समुदाय के लोगों को अपना राजनीतिक समर्थक बनाने का लालच पैदा हो गया।

1907 में कांग्रेस टूट गई। मध्यमार्गी धड़ा बहिष्कार की राजनीति के विरुद्ध था। इन लोगों का मानना था कि इसके लिए बल प्रयोग की आवश्यकता होती है जो कि सही नहीं है। संगठन टूटने के बाद कांग्रेस पर मध्यमार्गी धड़े का दबदबा बन गया जबकि तिलक के अनुयायी बाहर से काम करने लगे। दिसंबर 1915 में दोनों खेमों में एक बार फिर एकता स्थापित हुई। अगले साल कांग्रेस और मुसलिम लीग के बीच ऐतिहासिक लखनऊ समझौते पर दस्तखत हुए और दोनों संगठनों ने देश में प्रातिनिधिक सरकार के गठन के लिए मिलकर काम करने का फैसला लिया।

जनराष्ट्रवाद का उदय

1919 के बाद अंग्रेज़ों के खिलाफ चल रहा संघर्ष धीरे-धीरे एक जनांदोलन में तब्दील होने लगा। किसान, आदिवासी, विद्यार्थी और महिलाएँ बड़ी संख्या में इस आंदोलन से जुड़ते गए। कई बार औद्योगिक मज़दूरों ने भी आंदोलन में योगदान दिया। बीस के दशक से कुछ खास व्यावसायिक समूह भी कांग्रेस को सक्रिय समर्थन देने लगे थे। ऐसा क्यों हुआ?

पहले विश्व युद्ध ने भारत की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति बदल दी थी। इस युद्ध की वजह से ब्रिटिश भारत सरकार के रक्षा व्यय में भारी इज़ाफा हुआ था। इस खर्चे को निकालने के लिए सरकार ने निजी आय और व्यावसायिक मुनाफे पर कर बढ़ा दिया था। सैनिक व्यय में इज़ाफे तथा युद्धक आपूर्ति की वजह से ज़रूरी कीमतों की चीज़ों में भारी उछाल आया और आम लोगों की ज़िंदगी मुश्किल होती गई। दूसरी ओर व्यावसायिक समूह युद्ध से बेहिसाब मुनाफा कमा रहे थे। जैसा कि आप अध्याय 7 में देख चुके हैं, इस युद्ध में औद्योगिक वस्तुओं (जूट के बोरे, कपड़े, पटरियाँ) की माँग बढ़ा

गतिविधि

पता लगाएँ कि पहला विश्व युद्ध किन देशों ने लड़ा था?

दी और अन्य देशों से भारत आने वाले आयात में कमी ला दी थी। इस तरह, युद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों का विस्तार हुआ और भारतीय व्यावसायिक समूह विकास के लिए और अधिक अवसरों की माँग करने लगे।

युद्ध ने अंग्रेज़ों को अपनी सेना बढ़ाने के लिए विवश किया। एक विदेशी युद्ध की खातिर गाँवों में सिपाहियों की भर्ती के लिए दबाव डाला जाने लगा। बहुत सारे सिपाहियों को दूसरे देशों में युद्ध के मोर्चों पर भेज दिया गया। इनमें से बहुत सारे सिपाही युद्ध के बाद यह समझदारी लेकर लौटे कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ एशिया और अफ्रीका के लोगों का किस तरह शोषण कर रही हैं। फलस्वरूप ये लोग भी भारत में औपनिवेशिक शासन का विरोध करने लगे।

इसके अलावा, 1917 में रूस में क्रांति हुई। इस घटना के चलते किसानों और मज़दूरों के संघर्षों का समाचार तथा समाजवादी विचार बड़े पैमाने पर फैलने लगे थे जिससे भारतीय राष्ट्रवादियों को नई प्रेरणा मिलने लगी।

महात्मा गांधी का आगमन

इन्हीं हालात में महात्मा गांधी एक जननेता के रूप में सामने आए। गांधीजी 46 वर्ष की उम्र में 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे। वे वहाँ पर नस्लभेदी पाबंदियों के खिलाफ अहिंसक आंदोलन चला रहे थे और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी अच्छी मान्यता थी और लोग उनका आदर करते थे। दक्षिण अफ्रीकी आंदोलनों की वजह से उन्हें हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई; गुजराती, तमिल और उत्तर भारतीय; उच्च वर्गीय व्यापारी, वकील और मज़दूर, सब तरह के भारतीयों से मिलने-जुलने का मौका मिल चुका था।

महात्मा गांधी ने पहले साल पूरे भारत का दौरा किया। इस दौरान वे यहाँ के लोगों, उनकी ज़रूरतों और हालात को समझने में लगे रहे। उनके शुरुआती प्रयास चंपारण, खेड़ा और अहमदाबाद के स्थानीय आंदोलनों के रूप में

चित्र 6 *- नटाल कांग्रेस के संस्थापक, डरबन, दक्षिण अफ्रीका, 1895*

1895 में अन्य भारतीयों के साथ महात्मा गांधी ने नस्ली भेदभाव का विरोध करने के लिए नटाल कांग्रेस का गठन किया था। क्या आप चित्र में गांधीजी को पहचान सकते हैं? वह पिछली कतार के ठीक बीच में कोट और टाई पहने दिखाई दे रहे हैं।

सामने आए। इन आंदोलनों के माध्यम से उनका राजेंद्र प्रसाद और वल्लभ भाई पटेल से परिचय हुआ। 1918 में अहमदाबाद में उन्होंने मिल मज़दूरों की हड़ताल का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया।

आइए अब 1919 से 1922 के बीच के आंदोलनों को कुछ गहराई से देखें।

रॉलट सत्याग्रह

1919 में गांधीजी ने अंग्रेज़ों द्वारा हाल ही में पारित किए गए रॉलट कानून के खिलाफ सत्याग्रह का आह्वान किया। यह कानून अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे मूलभूत अधिकारों पर अंकुश लगाने और पुलिस को और ज़्यादा अधिकार देने के लिए लागू किया गया था। महात्मा गांधी, मोहम्मद अली जिन्ना तथा अन्य नेताओं का मानना था कि सरकार के पास लोगों की बुनियादी स्वतंत्रताओं पर अंकुश लगाने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने इस कानून को "शैतान की करतूत" और निरंकुशवादी बताया। गांधीजी ने लोगों से आह्वान किया कि इस कानून का विरोध करने के लिए 6 अप्रैल 1919 को अहिंसक विरोध दिवस के रूप में, "अपमान व याचना" दिवस के रूप में मनाया जाए और हड़तालें की जाएँ। आंदोलन शुरू करने के लिए सत्याग्रह सभाओं का गठन किया गया।

गतिविधि

जलियाँवाला बाग हत्याकांड के बारे में जानकारियाँ इकट्ठा करें। जलियाँवाला बाग क्या है? यहाँ किस तरह के अत्याचार हुए? ये अत्याचार कैसे हुए?

***चित्र 7** – वह परिसर जहाँ जनरल डायर ने लोगों की सभा पर गोलियाँ चलाई थीं।* बाद के इस चित्र में लोग दीवार पर बने गोलियों के निशानों की तरफ इशारा कर रहे हैं।

रॉलट सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ पहला अखिल भारतीय संघर्ष था हालांकि यह मोटे तौर पर शहरों तक ही सीमित था। अप्रैल 1919 में पूरे देश में जगह-जगह जुलूस निकाले गए और हड़तालों का आयोजन किया गया। सरकार ने इन आंदोलनों को कुचलने के लिए दमनकारी रास्ता अपनाया। बैसाखी (13 अप्रैल) के दिन अमृतसर में जनरल डायर द्वारा जलियाँवाला बाग में किया गया हत्याकांड इसी दमन का हिस्सा था। इस जनसंहार पर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी पीड़ा और गुस्सा जताते हुए **नाइटहुड** की उपाधि वापस लौटा दी।

नाइटहुड – ब्रिटिश राजा/रानी की तरफ से किसी व्यक्ति की अप्रतिम व्यक्तिगत सफलताओं या जनसेवा के लिए दी जाने वाली उपाधि।

रॉलट सत्याग्रह के दौरान लोगों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ हिंदुओं और मुसलमानों के बीच गहरी एकता बनाए रखने के लिए प्रयास किए। महात्मा गांधी भी यही चाहते थे। उनकी राय में भारत यहाँ रहने वाले *सभी* लोगों, यानी सभी हिंदुओं, मुसलमानों और अन्य धर्मों के लोगों का देश है। उनकी गहरी आकांक्षा थी कि हिंदू और मुसलमान किसी भी न्यायपूर्ण उद्देश्य के लिए एक-दूसरे का समर्थन करें।

ख़िलाफ़त आंदोलन और अहसयोग आंदोलन

ख़िलाफ़त का मुद्दा इसी तरह का एक ज्वलंत मुद्दा था। 1920 में अंग्रेज़ों ने तुर्की के सुल्तान (ख़लीफ़ा) पर बहुत सख्त संधि थोप दी थी। जलियाँवाला बाग हत्याकांड की तरह इस घटना पर भी भारत के लोगों में भारी गुस्सा था। भारतीय मुसलमान यह भी चाहते थे कि पुराने ऑटोमन साम्राज्य में स्थित पवित्र मुसलिम स्थानों पर ख़लीफ़ा का नियंत्रण बना रहना चाहिए। ख़िलाफ़त आंदोलन के नेता मोहम्मद अली और शौकत अली अब एक सर्वव्यापी असहयोग आंदोलन शुरू करना चाहते थे। गांधीजी ने उनके आह्वान का समर्थन किया और कांग्रेस से आग्रह किया कि वह पंजाब में हुए अत्याचारों (जलियाँवाला हत्याकांड) और ख़िलाफ़त के मामले में हुए अत्याचार के विरुद्ध मिल कर अभियान चलाएँ और स्वराज की माँग करें।

1921-22 के दौरान असहयोग आंदोलन को और गति मिली। हज़ारों विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड़ दिए। मोतीलाल नेहरू, सी.आर. दास, सी. राजगोपालाचारी और आसफ़ अली जैसे बहुत सारे वकीलों ने वकालत छोड़ दी। अंग्रेज़ों द्वारा दी गई उपाधियों को वापस लौटा दिया गया और विधान मंडलों का बहिष्कार किया गया। जगह-जगह लोगों ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई। 1920 से 1922 के बीच विदेशी कपड़ों के आयात में भारी गिरावट आ गई। परंतु यह तो आने वाले तूफान की सिर्फ एक झलक थी। देश के ज़्यादातर हिस्से एक भारी विद्रोह के मुहाने पर खड़े थे।

लोगों की पहलकदमी

कई जगहों पर लोगों ने ब्रिटिश शासन का अहिंसक विरोध किया। लेकिन कई स्थानों पर विभिन्न वर्गों और समूहों ने गांधीजी के आह्वान के अपने हिसाब से अर्थ निकाले और इस तरह के रास्ते अपनाए जो गांधीजी के विचारों से मेल नहीं खाते थे। सभी जगह लोगों ने अपने आंदोलनों को स्थानीय मुद्दों के साथ जोड़कर आगे बढ़ाया। आइए ऐसे कुछ उदाहरणों पर विचार करें।

खेड़ा, गुजरात में पाटीदार किसानों ने अंग्रेज़ों द्वारा थोप दिए गए भारी लगान के खिलाफ अहिंसक अभियान चलाया। तटीय आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु के भीतरी भागों में शराब की दुकानों की **घेरेबंदी** की गई। आंध्र प्रदेश के गुंटूर ज़िले में आदिवासी और गरीब किसानों ने बहुत सारे "वन सत्याग्रह" किए। इन सत्याग्रहों में कई बार वे चरायी शुल्क अदा किए बिना भी अपने जानवरों को जंगल में छोड़ देते थे। उनका विरोध इसलिए था

स्रोत 3

पीड़ा का चिरंतन सिद्धांत

अहिंसा से गांधीजी का क्या आशय था? अहिंसा किसी संघर्ष का आधार कैसे बन सकती थी? इस बारे में गांधीजी का यह कहना था :

> प्रतिफल की मामूली सी भी इच्छा किए बिना लगातार अच्छे काम करते जाने से अहिंसा का जन्म होता है...। यही अहिंसा का सबसे अमूल्य सबक है...। दक्षिण अफ्रीका में... मैंने अन्याय और अत्याचार को रोकने के उद्देश्य से पीड़ा के अनन्त सिद्धांत को सीख लिया है। इसका सकारात्मक आशय अहिंसा से है। इसके लिए आपको किसी भी व्यक्ति के हाथों खुशी-खुशी पीड़ा सहने के लिए तैयार रहना चाहिए और आप किसी के प्रति दुर्भावना नहीं रखेंगे, यहाँ तक कि आपके साथ बुरा करने वालों के साथ भी नहीं।

महात्मा गांधी, 12 मार्च 1938

घेरेबंदी – लोगों को किसी इमारत या दुकान में जाने से रोकने के लिए किया जाने वाला विरोध प्रदर्शन।

महंत – *सिख गुरुद्वारों के धार्मिक कर्ता-धर्ता*

गैर-कानूनी बेदखली – पटाईदारों को उनके पट्टे से जबरन और गैर-कानूनी ढंग से निकाल देना।

क्योंकि औपनिवेशिक सरकार ने वन संसाधनों पर उनके अधिकारों को बहुत सीमित कर दिया था। उन्हें यकीन था कि गांधीजी उन पर लगे कर कम करा देंगे और वन कानूनों को खत्म करा देंगे। बहुत सारे वन गाँवों में किसानों ने स्वराज का ऐलान कर दिया क्योंकि उन्हें उम्मीद थी कि "गांधी राज" जल्दी ही स्थापित होने वाला है।

सिंध (मौजूदा पाकिस्तान) में मुसलिम व्यापारी और किसान ख़िलाफ़त के आह्वान पर बहुत उत्साहित थे। बंगाल में भी ख़िलाफ़त-असहयोग के गठबंधन ने जबर्दस्त साम्प्रदायिक एकता को जन्म दिया और राष्ट्रीय आंदोलन को नई ताकत प्रदान की।

पंजाब में सिखों के अकाली आंदोलन ने अंग्रेज़ों की सहायता से गुरुद्वारों में जमे बैठे भ्रष्ट **महंतों** को हटाने के लिए आंदोलन चलाया। यह आंदोलन असहयोग आंदोलन से काफी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ दिखाई देता था। असम में "गांधी महाराज की जय" के नारे लगाते हुए चाय बागान मज़दूरों ने अपनी तनख्वाह में इज़ाफे की माँग शुरू कर दी। उन्होंने अंग्रेज़ी स्वामित्व वाले बागानों की नौकरी छोड़ दी। उनका कहना था कि गांधीजी भी यही चाहते हैं। उस दौर के बहुत सारे असमिया वैष्णव गीतों में कृष्ण की जगह "गांधी राज" का यशगान किया जाने लगा था।

जनता के महात्मा

इन उदाहरणों के आधार पर हम देख सकते हैं कि कई जगह के लोग गांधीजी को एक तरह का मसीहा, एक ऐसा व्यक्ति मानने लगे थे जो उन्हें मुसीबतों और गरीबी से छुटकारा दिला सकता है। गांधीजी वर्गीय टकरावों की बजाय वर्गीय एकता के समर्थक थे। परंतु किसानों को लगता था कि गांधीजी जमींदारों के खिलाफ उनके संघर्ष में मदद देंगे। खेतिहर मज़दूरों को यकीन था कि गांधीजी उन्हें ज़मीन दिला देंगे। कई बार आम लोगों ने खुद अपनी उपलब्धियों के लिए भी गांधीजी को श्रेय दिया। उदाहरण के लिए, एक शक्तिशाली आंदोलन के बाद संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) स्थित प्रतापगढ़ के किसानों ने पट्टेदारों की गैर-कानूनी बेदखली को रुकवाने में सफलता पा ली थी परंतु उन्हें लगता था कि यह सफलता उन्हें गांधीजी की वजह से मिली है। कई बार गांधीजी का नाम लेकर आदिवासियों और किसानों ने ऐसी कार्रवाइयाँ भी कीं जो गांधीवादी आदर्शों के अनुरूप नहीं थीं।

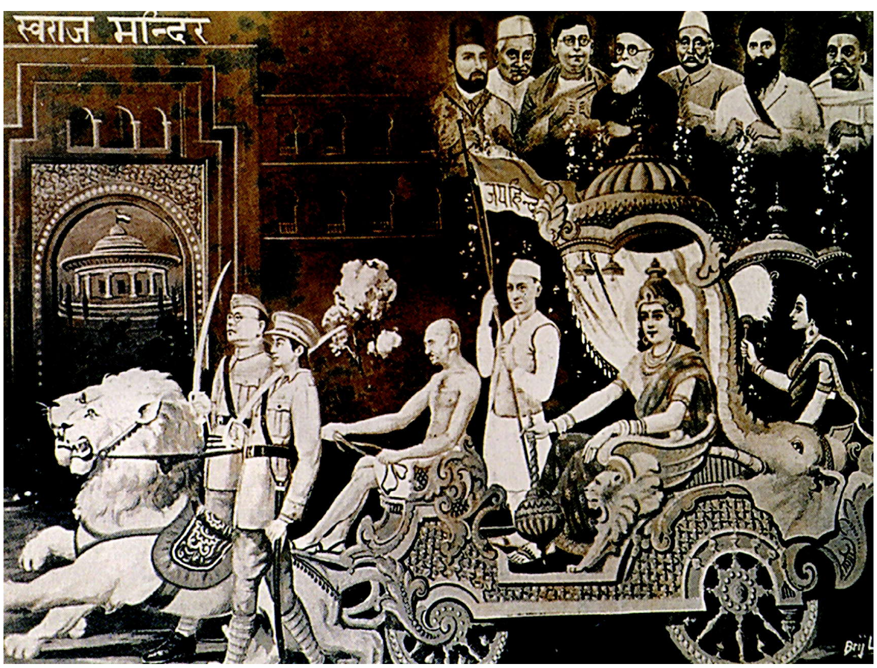

चित्र 8 – *महात्मा गांधी की जनता से उपजी एक छवि।*

जनता से उपजी छवियों में भी महात्मा गांधी को अकसर एक दैवी शक्ति के रूप में दिखाया जाता रहा था। इस तसवीर में वह कृष्ण के सारथी बने हैं। मार्गदर्शन कर रहे हैं। वह अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ युद्ध में अन्य राष्ट्रवादी नेताओं का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

स्रोत 4

"वही थे जिन्होंने प्रतापगढ़ में बेदखली रुकवाई थी"

इलाहाबाद ज़िले में किसान आंदोलन पर सीआईडी द्वारा तैयार की गई जनवरी 1921 की रिपोर्ट का एक अंश इस प्रकार था :

> दूर-दराज़ के गाँवों में भी गांधीजी के नाम का सिक्का जितना चलने लगा है, उसे देखकर अचंभा होता है। किसी को भी पता नहीं है कि वह कौन हैं या क्या हैं? फिर भी सबने मान लिया है कि वे जो कहते हैं वह सही है और उनका जो भी आदेश है वह पूरा होना चाहिए। वह एक महात्मा या साधु, एक पंडित, इलाहाबाद के एक ब्राह्मण, यहाँ तक कि एक देवता हैं... उनके नाम की असली ताकत का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रतापगढ़ के लोग मानते हैं कि उन्होंने ही बेदखली रुकवाई थी... आमतौर पर गांधीजी को लोग सरकार का विरोधी नहीं मानते बल्कि केवल ज़मींदारों का विरोधी मानते हैं... हम गांधीजी और सरकार के पक्ष में हैं।

गतिविधि

स्रोत 4 को पढ़ें।
इस रिपोर्ट के मुताबिक लोग महात्मा गांधी को किस तरह देखते थे। आपकी राय में लोग ऐसा क्यों सोचते थे कि गांधीजी ज़मींदारों के विरोधी हैं परंतु सरकार के विरोधी नहीं हैं। आपकी राय में लोग गांधीजी के अनुयायी क्यों थे?

1922-1929 की घटनाएँ

महात्मा गांधी हिंसक आंदोलनों के विरुद्ध थे। इसी कारण फरवरी 1922 में जब किसानों की एक भीड़ ने चौरी-चौरा पुलिस थाने पर हमला कर उसे जला दिया तो गांधीजी ने अचानक अहसयोग आंदोलन वापस ले लिया। उस दिन 22 पुलिस वाले मारे गये। किसान इसलिए बेकाबू हो गए थे क्योंकि पुलिस ने उनके शांतिपूर्ण जुलूस पर गोली चला दी थी।

असहयोग आंदोलन खत्म होने के बाद गांधीजी के अनुयायी ग्रामीण इलाकों में रचनात्मक कार्य शुरू करने पर ज़ोर देने लगे। चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू जैसे अन्य नेताओं की दलील थी कि पार्टी को परिषद चुनावों में हिस्सा लेना चाहिए और परिषदों के माध्यम से सरकारी नीतियों को प्रभावित करना चाहिए। बीस के दशक के मध्य में गाँवों में किए गए व्यापक सामाजिक कार्यों की बदौलत गांधीवादियों को अपना जनाधार फैलाने में काफी मदद मिली। 1930 में शुरू किए गए सविनय अवज्ञा आंदोलन के लिए यह जनाधार काफी उपयोगी साबित हुआ।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और हिंदुओं के संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की स्थापना बीस के दशक के मध्य की दो महत्वपूर्ण घटनाएँ थीं। भारत के भविष्य को लेकर इन पार्टियों की सोच में गहरा फ़र्क रहा है। अपने अध्यापकों की सहायता से उनके विचारों के बारे में पता लगाएँ। उसी दौरान क्रांतिकारी राष्ट्रवादी भगत सिंह भी सक्रिय थे। इस दशक के आखिर

चित्र 9 - चितरंजन दास।

स्वतंत्रता आंदोलन में चितरंजन दास एक मुख्य नेता थे। वह पूर्वी बंगाल में वकील थे। अहसयोग आंदोलन में वह काफी सक्रिय रहे।

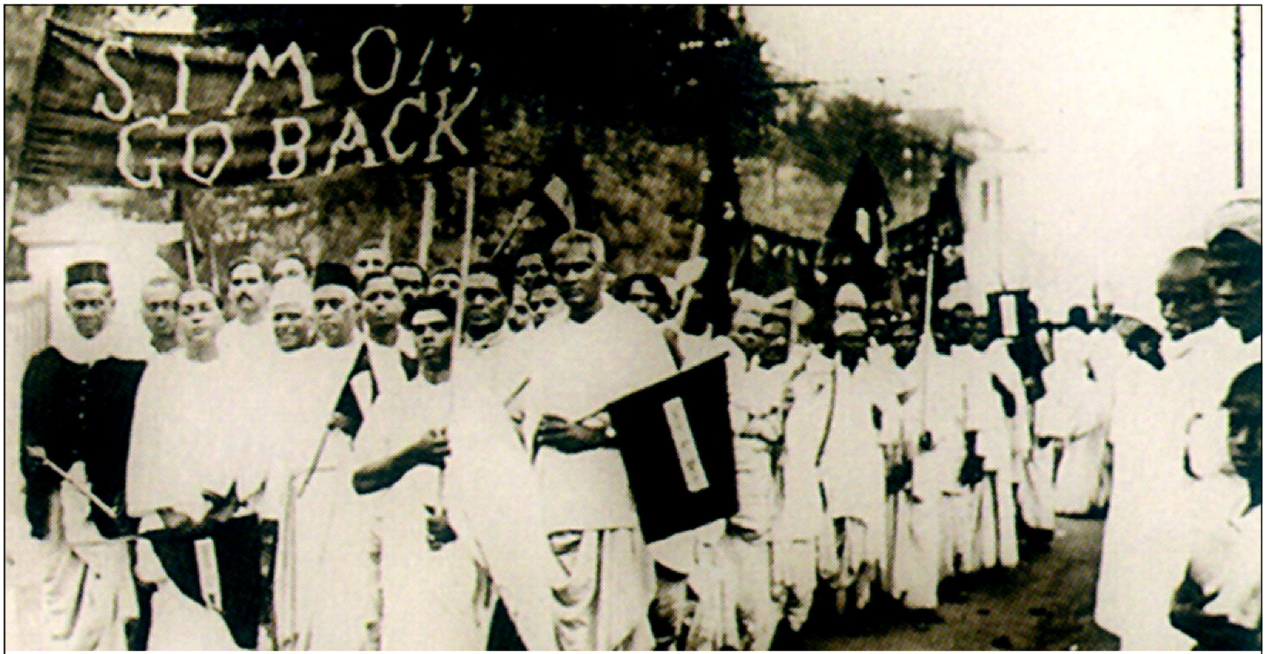

चित्र 10 – साइमन कमीशन का विरोध करते आंदोलनकारी।

1927 में इंग्लैंड में बैठी ब्रिटिश सरकार ने लॉर्ड साइमन की अगुवाई में एक आयोग भारत भेजा। इस आयोग को भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला करना था। इस आयोग में कोई भारतीय प्रतिनिधि नहीं था। इस फैसले की वजह से भारत में भारी असंतोष पैदा हुआ। सभी राजनीतिक संगठनों ने भी आयोग के बहिष्कार का फैसला लिया। जब कमीशन के सदस्य भारत पहुँचे तो प्रदर्शनों के साथ उनका स्वागत किया गया। प्रदर्शनकारियों का नारा था, "साइमन वापस जाओ"।

में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित किया। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 1929 में पारित किए गए इस प्रस्ताव के आधार पर 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में "स्वतंत्रता दिवस" मनाया गया।

चित्र 11 – भगत सिंह।

"बहरे कानों को सुनाने के लिए धमाके की ज़रूरत होती है। *इंक़लाब ज़िंदाबाद!*"

भगत सिंह और उनके साथियों जैसे क्रांतिकारी राष्ट्रवादी औपनिवेशिक शासन तथा अमीर शोषक वर्गों से लड़ने के लिए मज़दूरों और किसानों की क्रांति चाहते थे। इस काम को पूरा करने के लिए उन्होंने 1928 में दिल्ली स्थित फिरोजशाह कोटला में हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एचएसआरए) की स्थापना की थी। एचएसआरए के सदस्यों ने लाला लाजपत राय पर लाठीचार्ज करने वाले सांडर्स नामक पुलिस अफसर की हत्या की थी। इसी लाठीचार्ज के कारण बाद में लाजपत राय की मृत्यु हो गई थी।

अपने साथी राष्ट्रवादी बी.के. दत्त के साथ भगत सिंह ने 8 अप्रैल 1929 को केन्द्रीय विधान परिषद में बम फेंका था। क्रांतिकारियों ने अपने पर्चे में कहा था कि उनका मकसद किसी की जान लेना नहीं बल्कि "बहरों को सुनाना है", विदेशी सरकार को उसके द्वारा किए जा रहे भयानक शोषण से अवगत कराना था। इसी आरोप में भगत सिंह पर मुकदमा चलाया गया और 23 साल की उम्र में उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

दांडी मार्च

पूर्ण स्वराज अपने आप आने वाला नहीं था। इसके लिए लोगों को लड़ाई में उतरना था। 1930 में गांधीजी ने ऐलान किया कि वह नमक कानून तोड़ने के लिए यात्रा निकालेंगे। उस समय नमक के उत्पादन और बिक्री पर सरकार का एकाधिकार होता था। महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्रवादियों का कहना था कि नमक पर टैक्स वसूलना पाप है क्योंकि यह हमारे भोजन का एक बुनियादी हिस्सा होता है। नमक सत्याग्रह ने स्वतंत्रता की व्यापक चाह को लोगों की एक खास शिकायत *सभी* से जोड़ दिया था और इस तरह अमीरों और गरीबों के बीच मतभेद पैदा नहीं होने दिया।

गांधीजी और उनके अनुयायी साबरमती से 240 किलोमीटर दूर स्थित दांडी तट पैदल चलकर गए और वहाँ उन्होंने तट पर बिखरा नमक इकट्ठा करते हुए नमक कानून का सार्वजनिक रूप से उल्लंघन किया।

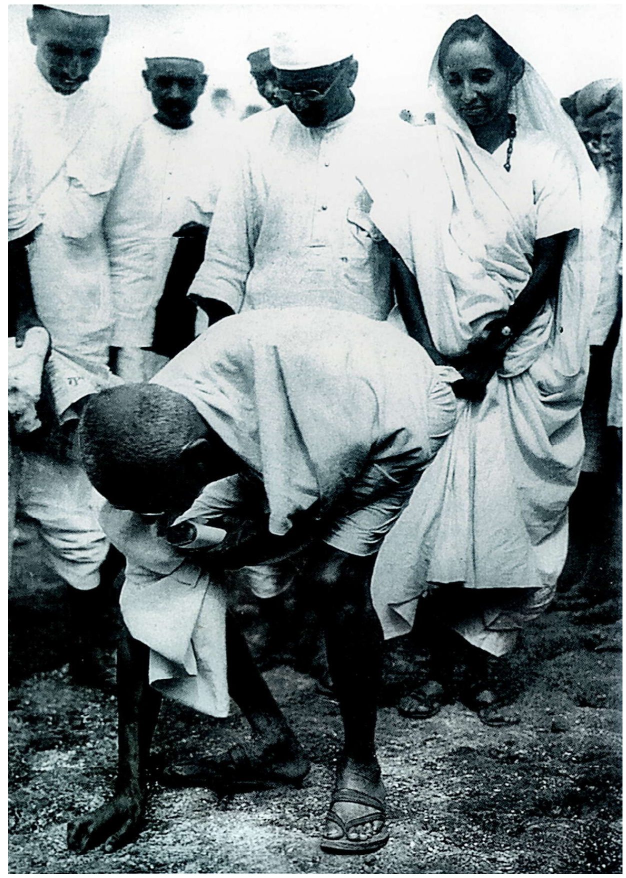

***चित्र 12** – महात्मा गांधी प्राकृतिक नमक इकट्ठा करते हुए नमक कानून की अवहेलना कर रहे हैं, दांडी, 6 अप्रैल 1930.*

स्वतंत्रता संघर्ष में महिलाएँ : कर्नाटक की अम्बाबाई

राष्ट्रीय आंदोलन में अलग-अलग पृष्ठभूमि वाली बहुत सारी महिलाओं ने हिस्सा लिया। युवा और वृद्ध, अकेली और विवाहित, ग्रामीण और शहरी, रूढ़िवादी और उदारवादी, सभी तरह के माहौल से आने वाली महिलाएँ आंदोलन में शामिल हुईं। स्वतंत्रता संघर्ष, महिला आंदोलन और स्वयं उनके लिए भी यह हिस्सेदारी बहुत महत्वपूर्ण थी।

अंग्रेज़ अफसरों और भारतीय राष्ट्रवादियों, दोनों को लगता था कि महिलाओं की सहभागिता ने राष्ट्रीय संघर्ष को ज़बरदस्त ताकत दी है। स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सेदारी के कारण महिलाएँ घरों से बाहर आने लगी थीं। इसने उन्हें विभिन्न व्यवसायों व शासन में जगह दिलाई और पुरुषों के साथ समानता का मार्ग प्रशस्त किया।

महिलाओं के लिए सहभागिता का क्या अर्थ था? इसकी सबसे अच्छी अभिव्यक्ति खुद उन्हीं के शब्दों में देखी जा सकती है। कर्नाटक की अम्बाबाई का विवाह 12 साल की उम्र में कर दिया गया था। 16 साल की उम्र में वह विधवा हो गई। उन्होंने उडीपी में विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों की घेरेबंदी की। उन्हें गिरफ्तार किया गया और सज़ा दी गई। रिहा होने पर उन्हें दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया। जब भी वह जेल से बाहर होतीं, सभाओं में भाषण देतीं, बुनाई-कताई सिखातीं और प्रभातफेरियों का आयोजन करतीं। अम्बाबाई इन्हें अपने जीवन के सबसे सुखद क्षण मानती थीं क्योंकि ऐसे क्षणों में उन्हें एक नया मकसद और प्रतिबद्धता दिखाई देती थी।

आंदोलन में हिस्सेदारी के अपने अधिकार को मनवाने के लिए महिलाओं को काफी जद्दोजहद करनी पड़ती थी। उदाहरण के लिए, नमक सत्याग्रह के दौरान शुरुआत में खुद महात्मा गांधी भी महिलाओं की हिस्सेदारी के समर्थन में नहीं थे। आखिरकार सरोजिनी नायडू ने उन्हें इस बात के लिए तैयार किया कि वे महिलाओं को भी आंदोलन में शामिल होने दें।

चित्र 13 – महात्मा गांधी के साथ सरोजिनी नायडू, पेरिस, 1931

1920 के दशक की शुरुआत से ही राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय सरोजिनी नायडू दांडी यात्रा के मुख्य नेताओं में से एक थीं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर पहुँचने वाली वह पहली महिला थीं (1925)।

उन्होंने पानी उबालकर भी नमक बनाया। इस आंदोलन में किसानों, आदिवासियों और महिलाओं ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। नमक के मुद्दे पर एक व्यावसायिक संघ ने पर्चा प्रकाशित किया। सरकार ने शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों के निर्मम दमन के ज़रिए आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया। हज़ारों आंदोलनकारियों को जेल में डाल दिया गया।

भारतीय जनता के साझा संघर्षों के चलते आखिरकार 1935 के गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट में **प्रांतीय स्वायत्तता** का प्रावधान किया गया। सरकार ने ऐलान किया कि 1937 में प्रांतीय विधायिकाओं के लिए चुनाव कराए जाएँगे। इन चुनावों के परिणाम आने पर 11 में से 7 प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी।

प्रांतीय स्तर पर 2 साल के कांग्रेसी शासन के बाद सितंबर 1939 में दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया। हिटलर के प्रति आलोचनात्मक रवैये के कारण कांग्रेस के नेता ब्रिटेन के युद्ध प्रयासों में मदद देने को तैयार थे। इसके बदले में वे चाहते थे कि युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्र कर दिया जाए। अंग्रेज़ों ने यह बात नहीं मानी। कांग्रेसी सरकारों ने विरोध में इस्तीफा दे दिया।

स्रोत 5

वीर लखन नायक को फाँसी दे दी गई

तीस के दशक में नबरंगपुर कांग्रेस, उड़ीसा के अध्यक्ष, बाजी मुहम्मद लिखते हैं :

> 25 अगस्त 1942 को... 19 लोग नबरंगपुर स्थित पपरंदी में हुई पुलिस फायरिंग में मौके पर ही मारे गए। बहुत सारे लोग बाद में घावों के कारण मर गए। 300 से ज्यादा घायल हुए। 1000 से ज्यादा को कोरापुट ज़िले की जेल में डाल दिया गया। कई को गोली मार दी गई या फाँसी पर लटका दिया गया। वीर लखन नायक (अंग्रेज़ों की अवहेलना करने वाले एक विख्यात जनजातीय नेता) को भी फाँसी पर लटका दिया गया।

बाजी हमें बतातें हैं कि लखन नायक अपनी फाँसी के बारे में चिंतित नहीं थे बल्कि उन्हें केवल इस बात का दुख था कि वे स्वतंत्रता का प्रभात नहीं देख पाएँगे।

बाजी मुहम्मद ने राष्ट्रीय संघर्ष में शामिल होने के लिए 20,000 लोगों को लामबंद किया था। उन्होंने कई बार सत्याग्रह किया। उन्होंने दूसरे विश्व युद्ध के ख़िलाफ़ हुए विरोध और भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लिया तथा कई बार लंबे समय तक जेल में रहे।

प्रांतीय स्वायत्तता – संघ के भीतर रहते प्रांतों को तुलनात्मक रूप से स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता देना।

चित्र 14 – भारत छोड़ो आंदोलन, अगस्त 1942

प्रदर्शनकारी हर जगह पुलिस से लोहा ले रहे थे। हज़ारों लोग गिरफ्तार हुए, हज़ार से ज्यादा मारे गए और असंख्य लोग घायल हुए।

भारत छोड़ो और उसके बाद

महात्मा गांधी ने दूसरे विश्व युद्ध के बाद अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ आंदोलन का एक नया चरण शुरू किया। उन्होंने अंग्रेज़ों को चेतावनी दी कि वे फौरन भारत छोड़ दें। गांधीजी ने भारतीय जनता से आह्वान किया कि वे "करो या मरो" के सिद्धांत पर चलते हुए अंग्रेज़ों के विरुद्ध अहिंसक ढंग से संघर्ष करें। गांधीजी और अन्य नेताओं को फौरन जेल में डाल दिया गया। इसके बावजूद यह आंदोलन फैलता गया। किसान और युवा इस आंदोलन में बड़ी संख्या में शामिल हुए। विद्यार्थी अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर आंदोलन में कूद पड़े। देश भर में संचार तथा राजसत्ता के प्रतीकों पर हमले हुए। बहुत सारे इलाकों में लोगों ने अपनी सरकार का गठन कर लिया।

सबसे पहले अंग्रेज़ों ने बर्बर दमन का रास्ता अपनाया। 1943 के अंत तक 90,000 से ज़्यादा लोग गिरफ्तार कर लिए गए थे और लगभग 1,000 लोग पुलिस की गोली से मारे गए थे। बहुत सारे इलाकों में हवाई जहाज़ों से भी भीड़ पर गोलियाँ बरसाने के आदेश दिए गए। परंतु आखिरकार इस विद्रोह ने ब्रिटिश राज को घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया।

स्वतंत्रता और विभाजन की ओर

1940 में मुसलिम लीग ने देश के पश्चिमोत्तर तथा पूर्वी क्षेत्रों में मुसलमानों के लिए "स्वतंत्र राज्यों" की माँग करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव में विभाजन या पाकिस्तान का ज़िक्र नहीं था। मुसलिम लीग ने उपमहाद्वीप के मुसलमानों के लिए स्वायत्त व्यवस्था की माँग क्यों की थी?

1930 के दशक के आखिरी सालों से लीग मुसलमानों और हिंदुओं को अलग-अलग "राष्ट्र" मानने लगी थी। इस विचार तक पहुँचने में बीस और तीस के दशकों में हिंदुओं और मुसलमानों के कुछ संगठनों के बीच हुए

बोस और आईएनए

चित्र 15 – सुभाषचंद्र बोस।

समाजवादी विचार रखने वाले आमूल परिवर्तनवादी राष्ट्रवादी सुभाषचंद्र बोस अहिंसा के गांधीवादी आदर्शों में विश्वास नहीं रखते थे हालांकि "राष्ट्रपिता" के रूप में गांधीजी का सम्मान करते थे। जनवरी 1941 में उन्होंने बिना किसी को बताए कलकत्ता छोड़ दिया और जर्मनी के रास्ते होते हुए सिंगापुर पहुँच गए। भारत को अंग्रेज़ों के नियंत्रण से मुक्त कराने के लिए उन्होंने वहाँ आज़ाद हिंद फौज (इंडियन नैशनल आर्मी-आईएनए) का गठन किया। 1944 में आज़ाद हिंद फौज ने इम्फाल और कोहिमा की ओर से भारत पर आक्रमण का प्रयास किया परंतु यह अभियान सफल नहीं हो पाया। आईएनए के सदस्यों को कैद कर लिया गया और उन पर मुकदमे चलाए गए। देश भर में तमाम तरह के लोगों ने आज़ाद हिंद फौज के सिपाहियों पर चलाए गए मुकदमों के खिलाफ चले संघर्षों में हिस्सा लिया।

चित्र 16 – मौलाना आज़ाद तथा कांग्रेस कार्यकारी समिति के अन्य सदस्य, सेवाग्राम, 1942

मौलाना आज़ाद का जन्म मक्का में हुआ था। उनके पिता बंगाली और माँ अरब मूल की थीं। बहुत सारी भाषाओं के जानकार आज़ाद इस्लाम के विद्वान और वहादते-दीन यानी सभी धर्मों की बुनियादी एकता के हिमायती थे। गांधीवादी आंदोलनों में हमेशा सक्रिय रहने वाले और हिंदू-मुसलिम एकता के पक्के हिमायती थे। उन्होंने जिन्ना के दो-राष्ट्र सिद्धांत का विरोध किया था।

चित्र 17 – गांधी-जिन्ना वार्ताओं से पहले गांधीजी के साथ बात करते चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, 1944

वयोवृद्ध राष्ट्रवादी और दक्षिण में नमक सत्याग्रह के नेता सी. राजगोपालाचारी 1946 में बनी अंतरिम सरकार के सदस्य थे और स्वतंत्र भारत के पहले भारतीय गवर्नर जनरल रहे। उन्हें लोग राजाजी के नाम से जानते थे।

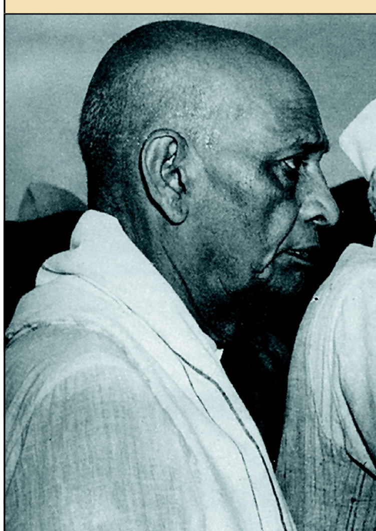

चित्र 18 – सरदार वल्लभ भाई पटेल ने 1945-47 के दौरान आज़ादी के लिए चली वार्ताओं में एक अहम भूमिका अदा की थी।

पटेल नादियाड़, गुजरात के एक गरीब किसान-व्यवसायी परिवार से थे।
1918 के बाद स्वतंत्रता आंदोलन की अगली कतार में रहने वाले पटेल 1931 में कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे।

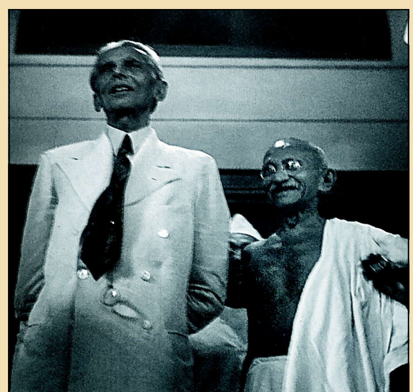

चित्र 19 – महात्मा गांधी के साथ मोहम्मद अली जिन्ना, सितंबर 1944

1920 तक हिंदू-मुसलिम एकता के समर्थन में सक्रिय रहे जिन्ना ने लखनऊ समझौता करवाने में एक अहम भूमिका अदा की थी। 1934 के बाद उन्होंने मुसलिम लीग को पुनर्जीवित किया और अंत में वे पाकिस्तान की स्थापना के सबसे मुख्य प्रवक्ताओं की कतार में जा पहुँचे।

चित्र 20 – जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन से पहले महात्मा गांधी से बात कर रहे हैं, जुलाई 1946

गांधीजी के शिष्य, कांग्रेस समाजवादी और अंतर्राष्ट्रीयतावादी विचार रखने वाले नेहरू राष्ट्रीय आंदोलन तथा स्वतंत्र भारत की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के मुख्य शिल्पियों में से थे।

"सामान्य" निर्वाचन क्षेत्र – ऐसे निर्वाचन क्षेत्र जहाँ किसी धार्मिक तथा अन्य सम्प्रदाय के लिए कोई आरक्षण नहीं था।

तनावों का भी हाथ रहा होगा। 1937 के प्रांतीय चुनाव संभवत: इससे भी ज़्यादा बड़ा कारण रहे। इन चुनावों ने मुसलिम लीग को इस बात का यकीन दिला दिया था कि यहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं और किसी भी लोकतांत्रिक संरचना में उन्हें हमेशा गौण भूमिका निभानी पड़ेगी। लीग को यह भी भय था कि संभव है कि मुसलमानों को प्रतिनिधित्व ही न मिल पाए। 1937 में मुसलिम लीग संयुक्त प्रांत में कांग्रेस के साथ मिलकर सरकार बनाना चाहती थी परंतु कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया जिससे फासला और बढ़ गया।

तीस के दशक में मुसलिम जनता को अपने साथ लामबंद करने में कांग्रेस की विफलता ने भी लीग को अपना सामाजिक जनाधार फैलाने में मदद दी। चालीस के दशक के शुरुआती सालों में जिस समय कांग्रेस के ज़्यादातर नेता जेल में थे, उस समय लीग ने अपना प्रभाव फैलाने के लिए तेज़ी से प्रयास किए। 1945 में विश्व युद्ध खत्म होने के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए कांग्रेस और लीग से बातचीत शुरू कर दी। यह वार्ता असफल रही क्योंकि लीग का कहना था कि उसे भारतीय मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि माना जाए। कांग्रेस इस दावे को मंजूर नहीं कर सकती थी क्योंकि बहुत सारे मुसलमान अभी भी उसके साथ थे।

1946 में दोबारा प्रांतीय चुनाव हुए। **"सामान्य" निर्वाचन क्षेत्रों** में कांग्रेस का प्रदर्शन तो अच्छा रहा परंतु मुसलमानों के लिए आरक्षित सीटों पर लीग को बेजोड़ सफलता मिली। लीग "पाकिस्तान" की माँग पर चलती रही। मार्च 1946 में ब्रिटिश सरकार ने इस माँग का अध्ययन करने और स्वतंत्र भारत के लिए एक सही राजनीतिक बंदोबस्त सुझाने के लिए तीन सदस्यीय परिसंघ भारत भेजा। इस परिसंघ ने सुझाव दिया कि भारत अविभाजित रहे और उसे मुसलिम बहुल क्षेत्रों को कुछ स्वायत्तता देते हुए एक ढीले-ढाले महासंघ के रूप में संगठित किया जाए। कांग्रेस और मुसलिम लीग, दोनों ही इस प्रस्ताव के कुछ खास प्रावधानों पर सहमत नहीं थे। अब देश का विभाजन अवश्यंभावी था।

चित्र 21 – ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत के प्रमुख पश्तून नेताओं में से एक थे। इस चित्र में अपने सहयोगियों के साथ बिहार में एक शांति यात्रा में हिस्सा ले रहे हैं, मार्च 1947.

ग़फ़्फ़ार खान को बादशाह ख़ान के नाम से भी जाना जाता है। वह खुदाई खिदमतगार संगठन के संस्थापक थे। यह उनके प्रांत के पठानों में लोकप्रिय शक्तिशाली अहिंसक आंदोलन था। बादशाह ख़ान भारत विभाजन के सख्त ख़िलाफ थे। उन्होंने 1947 में इस फैसले पर मंज़ूरी देने के लिए कांग्रेस के अपने साथियों की भर्त्सना की थी।

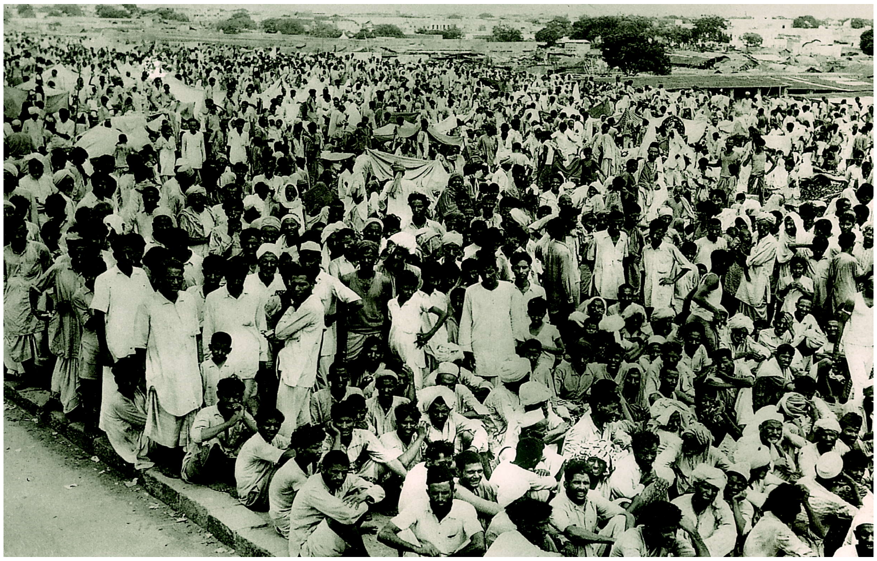

चित्र 22 – हिंसाग्रस्त पंजाब से आए शरणार्थी आश्रय और भोजन की तलाश में दिल्ली में इकट्ठा हो रहे हैं।

कैबिनेट मिशन की इस विफलता के बाद मुसलिम लीग ने पाकिस्तान की अपनी माँग मनवाने के लिए जनांदोलन शुरू करने का फैसला लिया। उसने 16 अगस्त 1946 को "प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस" मनाने का आह्वान किया। इसी दिन कलकत्ता में दंगे भड़क उठे जो कई दिन चलते रहे। इन दंगों में हज़ारों लोग मारे गए। मार्च 1947 तक उत्तर भारत के विभिन्न भागों में भी हिंसा फैल गई थी।

कई लाख लोग मारे गए। असंख्य महिलाओं को विभाजन की इस हिंसा में अकथनीय अत्याचारों का सामना करना पड़ा। करोड़ों लोगों को अपने घर-बार छोड़कर भागना पड़ा। अपने मूल स्थानों से बिछड़कर ये लोग रातोंरात अजनबी ज़मीन पर शरणार्थी बनकर रह गए। विभाजन का नतीजा यह भी हुआ कि भारत की शक्ल-सूरत बदल गई, उसके शहरों का माहौल बदल गया और एक नए देश – पाकिस्तान – का जन्म हुआ। इस तरह ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता का यह आनंद विभाजन की पीड़ा और हिंसा के साथ हमारे सामने आया।

अन्यत्र

अफ्रीका में राष्ट्रवाद : घाना का उदाहरण

उन्नीसवीं सदी के आखिर और बीसवीं सदी की शुरुआत में बहुत सारे अफ्रीकी और एशियाई देशों में राष्ट्रवाद का उदय हुआ। इनमें से बहुत सारे देशों में राष्ट्रवाद का उदय स्वतंत्रता के लिए उपनिवेशवाद विरोधी संघर्षों के तहत हुआ था।

अफ्रीका में औपनिवेशिक शासन तानाशाही जैसा था। विदेशी शासकों के प्रतिनिधि के रूप में केवल "मुखियाओं" को ही शासन चलाने की छूट दी जाती थी। या फिर अफ्रीकियों के बारे में केवल गोरे प्रतिनिधियों वाली सभाएँ कानून बनाती थीं। कम से कम दूसरे विश्व युद्ध के बाद तक अफ्रीकियों के पास निर्णय लेने या प्रतिनिधित्व की ताकत नहीं थी। स्थानीय भूस्वामियों या किसानों से ज़मीन का ज़बरन अधिग्रहण, करों में वृद्धि और खराब कार्यपरिस्थितियों की वजह से बहुत सारे अफ्रीकी आंदोलन शुरू हुए।

1957 में घाना स्वतंत्रता पाने वाला उप-सहारा अफ्रीका का पहला देश बना। इससे पहले उसे गोल्ड कोस्ट के नाम से जाना जाता था। यहाँ स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व कुआमे नकरूमा की कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी कर रही थी। घाना की जनता ने स्वतंत्रता के लिए हड़ताल, बहिष्कार और जनांदोलनों का रास्ता अपनाया था। 1951 में कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी को चुनावों में ज़बर्दस्त सफलता मिली थी। इस पार्टी ने उस प्रणाली का विरोध किया जिसमें ब्रिटिश शासकों ने मुखियाओं को विधान सभाओं में अपने प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार दिया हुआ था। इस पार्टी ने अंग्रेज़ों पर दबाव डाला कि वे ऐसी विधानसभा बनाएँ जिसमें कोई मनोनीत या विशेष सदस्य न हों। 1954 में इस माँग को मान लिया गया। 1956 में नई विधान परिषद के लिए चुनाव हुए। कन्वेंशन पीपुल्स पार्टी ने इन चुनावों में सफलता पाई और इस तरह "घाना" के नाम से एक नवस्वाधीन राष्ट्र के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया।

फिर से याद करें

1. 1870 और 1880 के दशकों में लोग ब्रिटिश शासन से क्यों असंतुष्ट थे?
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस किन लोगों के पक्ष मे बोल रही थी?
3. पहले विश्व युद्ध से भारत पर कौन से आर्थिक असर पड़े?
4. 1940 के मुसलिम लीग के प्रस्ताव में क्या माँग की गई थी?

आइए विचार करें

5. मध्यमार्गी कौन थे? वे ब्रिटिश शासन के खिलाफ किस तरह का संघर्ष करना चाहते थे?
6. कांग्रेस में आमूल परिवर्तनवादी धड़े की राजनीति मध्यमार्गी धड़े की राजनीति से किस तरह भिन्न थी?
7. चर्चा करें कि भारत के विभिन्न भागों में असहयोग आंदोलन ने किस-किस तरह के रूप ग्रहण किए? लोग गांधीजी के बारे में क्या समझते थे?
8. गांधीजी ने नमक कानून तोड़ने का फैसला क्यों लिया?
9. 1937-47 की उन घटनाओं पर चर्चा करें जिनके फलस्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ?

आइए करके देखें

10. पता लगाएं कि आपके शहर, ज़िले, इलाके या राज्य में राष्ट्रीय आंदोलन किस तरह आयोजित किया गया। किन लोगों ने उसमें हिस्सा लिया और किन लोगों ने उसका नेतृत्व किया? आपके इलाके में आंदोलन को कौन सी सफलताएँ मिलीं?
11. राष्ट्रीय आंदोलन के किन्हीं दो सहभागियों या नेताओं के जीवन और कृतित्व के बारे में और पता लगाएँ तथा उनके बारे में एक संक्षिप्त निबंध लिखें। आप किसी ऐसे व्यक्ति को भी चुन सकते हैं जिसका इस अध्याय में ज़िक्र नहीं आया है।

आइए कल्पना करें

मान लीजिए कि आप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय हैं। इस अध्याय को पढ़ने के बाद संक्षेप में बताइए कि आप संघर्ष के लिए कौन से तरीके अपनाते और आप किस तरह का स्वतंत्र भारत रचते?